अमृतचन्द्राचार्य कृत पुरुषार्थसिद्धि-उपाय ॐ श्रीजिनाय नमः श्रीमद्-अमृतचन्द्राचार्यदेव विरचित पुरुषार्थसिद्धि-उपाय आचार्यकल्प श्री पण्डित टोडरमलजीकृत भाषावचनिका का गुजराती अनुवाद। टोडरमलजी ने कहा है, उसका भाषानुवाद है। मङ्गलाचरण, मङ्गलाचरण भी सूक्ष्म है। देव-शास्त्र और गुरु तीनों को वन्दन करते हैं। जो शास्त्र की पद्धति है न पहली ? देव-शास्त्र और गुरु। पहले देव को लिया है। अमृतचन्द्राचार्य भले नाम दिया, परन्तु पहले देव लिये हैं।

परम पुरुष निज अर्थ को, साधि हुए गुणवृन्द।
आनन्दामृत-चन्द्र को, वन्दत हूँ सुखकन्द।।१।।

www.vitragvani.com

नीचे इसका अर्थ किया है। **जो परम पुरुष निज स्वरूप साधकर....** देव की मुख्य बात है। जो कोई आत्मा परम आत्मा अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप को अन्तर साधकर शुद्ध गुण समूह वृन्द, शुद्धगुण के वृन्द–समूहरूप हुए हैं। जिन्हें पर्याय में अनन्त गुणों की निर्मलता प्रगट हुई है वे शुद्धगुण–पर्याय यहाँ लेना है। गुण तो त्रिकाल है, परन्तु जिन्हें शुद्ध गुणसमूह प्रगट हुए हैं, अर्थात् पर्यायरूप जिन्हें परिणमे हैं – ऐसे देव। **जो सुखकन्द आनन्दस्वरूप** ऐसे उस सुख के कन्द **आनन्दस्वरूप श्री अमृतचन्द्राचार्य की वन्दना करता हूँ।** यह तो नाम इनका दिया है परन्तु अमृतचन्द्राचार्य (अर्थात्) मूल तो परमात्मा हैं। अमृतचन्द्राचार्य ऐसे देव को वन्दन करता हूँ। उसमें अमृतचन्द्राचार्य भी शामिल आ गये। मूल तो देव को वन्दन है।

वाणी में जरा अटपटी भाषा है। मूल तो शास्त्र को–वाणी को वन्दन करते हैं।

वानी बिन वैन न बने, वैन बिना बिन नैन।
नैन बिना ना वान बन, नमों वानि बिन बैन।।२।।

भाषा अलग है। **वानी बिन वैन न बने, वाणी का योग न हो तो वर्णन नहीं होता...** वाणी बिन बैन न बने, वाणी के योग बिना वचन नहीं होते। **वैन बिना बिन नैन, और जिनवाणी के वर्णन बिना ज्ञानचक्षु नहीं होते....** बिन नैन, ऐसा। जिनवाणी के बिना आत्मा को ज्ञानचक्षु प्रगट नहीं होते, ज्ञानचक्षु नहीं होते। **नैन बिना ना वान बन, और भावभासनरूप ज्ञानचक्षु के बिना...** नैन अर्थात् ज्ञानचक्षु। **(नैन बिना ना वान बन,) बिना वर्णन के निमित्त नहीं कहा जा सकता...** भावभासनरूप (बिना) वाणी, उसे यथार्थ वाणी नहीं कहा जाता – ऐसा कहते हैं। भावभासन के बिना की वाणी, वह वाणी नहीं कहलाती – ऐसा कहते हैं। आत्मा शुद्धस्वरूप – ऐसा भावभासन है, उसे जिनवाणी को वाणी कहने में आता है, बाकी दूसरे को वाणी नहीं कहते और **नमों वानि बिन बैन** बिन बैन। वाणी बिना अर्थात् **निरक्षरी....** बिन बैन अर्थात् निरक्षरी—ऐसी वाणी को नमो अर्थात् नमस्कार करते हैं। वाणी अर्थात् शास्त्र। नमो वाणी बिन बैन। ऐसा कि वाणी बिना जो निरक्षरी वाणी है, भेदरहित की ऐसी वाणी को नमस्कार करते हैं।

अब, तीसरे गुरु को नमस्कार करते हैं। शास्त्र की शक्ति है। टोडरमलजी कहते हैं।

www.vitragvani.com

गुरु उर भावै आप-पर, तारक वारक पाप।
सुरगुरु गावै आप-पर हारक वाच कलाप।।३।।

श्रीगुरु कैसे हैं ? कि हृदय में स्व-पर भेदविज्ञान भाते हैं... देखो! इसकी व्याख्या! **गुरु उर भावै आप-पर,.....** भाते हैं और गाते हैं - ये दो अर्थ करेंगे। **गुरु उर भावै आप पर....** स्वयं अपने भाव को स्व को, पर को भेद करते हैं। यह भेद का पूरा हो गया है। गुरु अभी स्व-पर को साधते हैं, भेदज्ञान करते हैं, अन्दर से। भाव में राग से स्वभाव को भिन्न करके भेदज्ञान करते हैं। **तारक हैं....** वे जगत के जीवों को तिरानेवाले हैं। **तारक हैं, पापों का निवारण करनेवाले हैं;....** अपने पाप का निवारण और दूसरे को भी समझाकर पाप का निवारण करनेवाले हैं।

सुरगुरु गावै आप पर,.... यह **वचनबली, वादी को जीतनेवाले जो सुरगुरु, वे भेदविज्ञान गाते हैं...** लो, समझे ? **हारक वाच कलाप...** वादी अर्थात् वचनबली जो वादी, उसे भी जीतनेवाले ऐसे जो सुरगुरु, वे भेदविज्ञान गाते हैं, भेदविज्ञान को गाते हैं, भेदविज्ञानी सुखी है। मैं नमो, श्रीगुरु की व्याख्या की। यह तो साधारण व्याख्या की कि गुरु कैसे हों। आप-पर की व्याख्या जुदाई की थी।

मैं नमों नगन जैन जिन, ज्ञान ध्यान धन लीन।
मैन मान बिन दानधन, ऐन हीन तन छीन।।४।।

शब्द भी कठोर है। **मैं जिनमुद्रा धारक जैन....** और '**नमों नगन जैन जिन...**' **मैं जिनमुद्रा धारक जैन नग्न दिगम्बर मुनि को नमस्कार करता हूँ,... ज्ञान ध्यान धन लीन....** जो ज्ञान और ध्यानरूपी धन में लीन है। धन है धन। कैसा ? ज्ञान और ध्यानरूपी धन जिन्हें हैं। सच्ची समझ और अन्तर एकाग्रता। ऐसा जो ज्ञान और ध्यानरूपी धन, उसके **स्वरूप में जो मुनि लीन है,....** देखो, यह मुनि की व्याख्या! यह मुनि कहलाते हैं। फिर मैन मान है न ? **मैन मान बिना दान धन....** और **काम, मान (अर्थ में है) (घमण्ड, कर्तृत्व, ममत्व) से रहित...** है। मैन अर्थात् मान से रहित। मेघ और दानधन, दान में धन है। मेघवृष्टि बरसानेवाले हैं।

मेघ समान धर्मोपदेश की वृष्टि करनेवाले,.... धर्मोपदेश की वृष्टि करनेवाले

www.vitragvani.com

गुरु हैं। यह वाणी की व्याख्या हुई। पापरहित और क्षीणकाय हैं। कैसे हैं मुनि? उन्हें पाप नहीं है और क्षीणकाय अर्थात् **कषाय और काया क्षीण हैं....** दो अर्थ किये। **तथा ज्ञानस्वरूप में अत्यन्त पुष्ट हैं।** लो! ऐसा.... तन क्षीण-शरीर कमजोर पड़ गया है। कार्माण शरीर आदि, विकार आदि सब कमजोर पड़ गये हैं, क्षीण हो गये हैं और क्षीण होकर ज्ञानस्वरूप में बेहद पुष्टस्वरूप हैं। वहाँ क्षीण हो गया परन्तु यहाँ पुष्ट हुए हैं। यह ऊपर आ गया है न? **ज्ञान ध्यान धन,....** अन्दर कृश हो गया है, यहाँ पुष्ट हुआ है। आत्मा के शुद्ध आनन्दस्वरूप में पुष्टि हुई है और बाहर के कषाय तथा काया कृश हो गये हैं। लो! इतना तो हिन्दी में टोडरमलजी ने देव-शास्त्र-गुरु के विषय में कहा।

कोई नर निश्चय से आत्मा को शुद्ध मान,
हुआ है स्वच्छन्द न पिछाने निज शुद्धता।

कोई तो ऐसे हैं - अकेले निश्चय को शुद्ध मानकर और शुद्ध ही आत्मा है, पर्याय की शुद्धता करने का यथार्थ कहते नहीं। अकेला आत्मा शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... परन्तु किस प्रकार शुद्ध? द्रव्य-गुण शुद्ध या पर्याय शुद्ध? ऐसे निश्चय से आत्मा को पर्याय से भी-अवस्था से शुद्ध मानकर, **हुआ है स्वच्छन्द...** यह अशुद्धता मिटाने का प्रयत्न नहीं करते और आत्मा शुद्ध है (- ऐसा मानकर) स्वच्छन्दी-निश्चयाभासी हो जाते हैं। **हुआ है स्वच्छन्द न पिछाने निज शुद्धता।** मेरी शुद्धता पर्याय है, प्रगट हुई है या नहीं? - इसे नहीं जानते। द्रव्य-गुण शुद्ध है, द्रव्य-गुण शुद्ध है, सब शुद्ध है - ऐसा मानकर, स्वच्छन्द करके अपनी निर्मलदशा की शुद्धता को जानते नहीं। (उन्हें) निश्चयाभासी अज्ञानी कहा जाता है।

कोई व्यवहार दान तप शीलभाव को ही,

लो! चार बोल हुए। यह लोगों में आता है न? दान, तप और शील, भाव सब कहते हैं, दान, तप, शील भाव, वह धर्म है।

कोई व्यवहार दान तप शीलभाव को ही,
आत्मा का हित मान छोड़ै नहीं मूढ़ता।।

दान में धर्म माने, बाह्य तप आदि में धर्म माने, उस व्यवहार आचरण में धर्म माने;

www.vitragvani.com

भाव अर्थात् शुभभाव आदि को धर्म माने। वह आत्मा का हित माने, उसमें आत्मा का हित है (-ऐसा माने)। वह तो शुभभाव है। दान, तप, शील और भाव - चार आते हैं न श्वेताम्बर में? दान के चार प्रकार... व्यवहारदान - ऐसी भाषा है न? कोई व्यवहारदान, ऐसा। वापस वह निश्चयदान अन्दर रह जाता है, वह तो अलग है। **व्यवहार दान तप शील भाव को ही** व्यवहारभाव को, हों! भाषा है न? कोई व्यवहार दान, व्यवहार तप, व्यवहार शील और व्यवहार भाव, ऐसा। व्यवहार को ही **आत्मा का हित मान।** जो इन्होंने लिखा है और, मक्खनलालजी ने निकाल दिया है। इसे यहाँ निकाल दिया है। ऐसे के ऐसे गड़बड़ करते हैं। वे स्वयं टीका करनेवाले हैं न, इसलिए निकाल दिया।

आत्मा का हित मान इस दान को धर्म माने, तप से धर्म माने, शील अर्थात् व्यवहार आचरण, ब्रह्मचर्य को धर्म माने और भाव को - व्यवहारभाव अर्थात् शुभभाव। व्यवहारभाव अर्थात् शुभभाव, उसे **आत्मा का हित मान छोड़ै नहीं मूढ़ता।** यह आत्मज्ञान नहीं करता। मूढ़ता और बाह्य आत्मपने को नहीं छोड़ता। ऐसे चार प्रकार करे, वह बहिरात्मा है। मूढ़ता नहीं छोड़ता। ज्ञानानन्दस्वरूप निष्क्रिय-राग से रहित है, उसे नहीं जानता। उसमें कितना आनन्द! देखो न! कितना इनके शुरुआत के उपोद्घात में कितना भरा है। अभी के टीका करनेवाले गड़बड़ करते हैं। समझ में आया? आत्मा का हित मानकर, व्यवहार भाव में, व्यवहार दान में, साधु को आहार देना, लो! लेना, उसमें आत्मा का हित है, आत्मा को संवर-निर्जरा होती है अथवा... ऐसे व्यवहार तप के सब प्रकार लेना। अनशन, अवमोदर्य, त्याग का विकल्प सब व्यवहार। ऐसे व्यवहार दान, तप, शील, प्रकृति का सम्बन्ध व्यवहार; शुभभाव अर्थात् ब्रह्मचर्य। **भाव को ही (शीलभाव को ही) आत्मा का हित मान छोड़ै नहीं मूढ़ता।** अपनी मूढ़ता छोड़ता नहीं।

कोई व्यवहारनय-निश्चय के मारग को,
भिन्न-भिन्न जानकर करत निज उद्धता।

देखो! अब आया। कितने ही तो व्यवहार और निश्चय के मार्ग को भिन्न-भिन्न जाने। पहले हो व्यवहार और फिर हो निश्चय, ऐसे भिन्न-भिन्न मार्ग मानते हैं। भिन्न नहीं, एक साथ है। निश्चय अभेद है और व्यवहार भेद एक साथ है। उसके बदले देखो, अभी

www.vitragvani.com

इससे अत्यन्त विरुद्ध है। **कोई व्यवहारनय-निश्चय के मारग को,** व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्ग को भिन्न-भिन्न जानते हैं, ऐसा ही कहते हैं। पहला व्यवहारमोक्षमार्ग अलग हो, निश्चयमार्ग अलग हो, साथ में दो हो? व्यवहारमार्ग साधन है, उसे करते-करते साध्य निश्चय प्रगट हो - उसे टोडरमलजी इनकार करते हैं, भाई! ऐसा है नहीं। ऐसा नहीं होता। वह तो मात्र भेद है। निश्चय के स्वरूप का साधन, उसमें जरा भेद रह जाता है, उसे व्यवहार कहते हैं, परन्तु अलग-अलग मार्ग है, व्यवहार पहले, निश्चय बाद में, व्यवहार साधन और निश्चय साध्य बाद में हो - ऐसा है नहीं। देखो! एक लाईन में कितना समाहित कर दिया!

भिन्न-भिन्न जानकर करत निज उद्धता... यह स्वयं की उद्धताई है - ऐसा कहते हैं। भगवान के मार्ग को समझता नहीं, उद्धताई है। यह बहुत सरस बात है। देखो! **भिन्न-भिन्न जानकर करत निज उद्धता...** उनकी बात माने नहीं। व्यवहार पहला भिन्न और निश्चय भिन्न - ऐसा कहना है। एक साथ है। समझे न? एकता है, देखो! इसमें कहेंगे। **निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की एकतारूप उपदेश जिसमें है,...** पहली गाथा के ऊपर, पहली गाथा के ऊपर। **एकतारूप उपदेश जिसमें है,...** एकता अर्थात् साथ में है, ऐसा। एकता अर्थात् दोनों साथ में है, आगे-पीछे नहीं। व्यवहार पहले और निश्चय बाद में - ऐसा होवे किसका परन्तु? तत्त्व की दृष्टि हुई, अनुभवदृष्टि हुई, निश्चय भान हो, तब व्यवहार होता है। देखो! इस पुरुषार्थसिद्ध्युपाय का यह व्याख्यान चलता है। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय की कोई दूसरी बात नहीं होती... होवे या नहीं?.... भिन्न-भिन्न को जानकर व्यवहार अलग है, निश्चय अलग है - ऐसा जानकर अपनी उद्धता करता है। भगवान का मार्ग ऐसा नहीं है, तब है कैसे?

जाने जब निश्चय के भेद व्यवहार सब,
कारण को उपचार माने तब बुद्धता।।५।।

जाने जब निश्चय के भेद व्यवहार सब,... निश्चयस्वरूप आत्मा की दृष्टि-ज्ञान-चारित्र निश्चय। उसे भेदरूप अर्थात् व्यवहार विकल्प उठता होता है। व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र। **भेद व्यवहार सब,...** यह सब व्यवहार है।

www.vitragvani.com

निश्चय के समकाल में जितने जो विकल्प हैं - श्रद्धा के, ज्ञान के, और चारित्र महाव्रत आदि के सब **व्यवहार सब, कारण को उपचार माने...** लो! ठीक! उसे कारण का उपचार (माने)। साथ में, हों! साथ में। पहले कारण और फिर कार्य - इससे तो इनकार किया, भिन्न-भिन्न - ऐसा नहीं। (अज्ञानी कहता है) - नहीं, कारण पहले होता है और कार्य बाद में होता है। **जाने जब निश्चय के भेद व्यवहार सब, कारण को उपचार माने....** यह जो व्यवहार है, उसे वह कारण माने या उपचार माने, **तब बुद्धता।** तब सम्यग्ज्ञान कहलाता है। कहो, समझ में आया? यहाँ इतने में समाहित कर दिया। लो!

(दोहा)

श्रीगुरु परम दयालु हो, दिया सत्य उपदेश।
ज्ञानी माने जानकर, ठानत मूढ़ कलेश।।६।।

श्रीगुरु ने परम दयालु होकर दिया सत्य उपदेश। मोक्षमार्ग का सच्चा, सत्य उपदेश दिया। **ज्ञानी माने...** ज्ञानी सच्चा जानकर मानता है। मूढ़ तो उसमें से अकेला क्लेश, राग-द्वेष को ग्रहण करता है, राग-द्वेष का भाव ग्रहण करके दुःखी होता है। जो वीतरागमार्ग ग्रहण करना चाहिए, उसे ग्रहण न करके **ठानत मूढ़ कलेश।** राग और द्वेष के परिणाम को धर्म मानकर, उसमें से-शास्त्र में से निकालता है कि यह है... यह है... यह है। **ठानत मूढ़ कलेश।** कषाय ग्रहण करता है, ऐसा। वीतरागभाव ग्रहण नहीं करता।

गाथा - १

अब ग्रन्थकर्ता श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव मङ्गलाचरण के निमित्त अपने इष्टदेव को स्मरण करके, इस जीव का प्रयोजन सिद्ध होने में कारणभूत, निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की एकतारूप उपदेश जिसमें है, ऐसे ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं।

सूत्रावतार:-

(आर्या छन्द)

तज्जयति परं ज्योति: समं समस्तैरनन्तपर्यायै:।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।।१।।

त्रैकालिक पर्याय सहित जो सकल पदार्थ समूह अहो।
दर्पणतल-वत् झलकें जिसमें परम ज्योति जयवन्त रहो।।१।।

अन्वयार्थ : (यत्र) जिसमें (दर्पणतल इव) दर्पण के तल की तरह (सकला) समस्त (पदार्थमालिका) पदार्थों का समूह (समस्तैरनन्तपर्यायै:) अतीत, अनागत और वर्तमान काल की समस्त अनन्त पर्यायों सहित (प्रतिफलित) प्रतिबिम्बित होता है, (तत्) वह (परं ज्योति:) सर्वोत्कृष्ट शुद्ध चेतनारूप प्रकाश (जयति) जयवन्त वर्तो।

टीका : 'तत् परंज्योति: जयति' - वह परम ज्योति-सर्वोत्कृष्ट शुद्धचेतना का प्रकाश जयवन्त वर्तता है। वह कैसा है? 'यत्र सकला पदार्थमालिका प्रतिफलति' - जिस शुद्धचेतनाप्रकाश में समस्त ही जीवादि पदार्थों का समूह प्रतिबिम्बित होता है। किस प्रकार? 'समस्तै: अनन्तपर्यायै: समं' - अपनी समस्त अनन्त पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित होता है।

भावार्थ : शुद्धचेतनाप्रकाश की कोई ऐसी ही महिमा है, कि उसमें, जितने भी पदार्थ हैं, वह सभी अपने आकारसहित प्रतिभासमान होते हैं। किस प्रकार? 'दर्पणतल इव' - जिस प्रकार दर्पण के ऊपर के भाग में घटपटादि प्रतिबिम्बित होते हैं। यहाँ दर्पण

www.vitragvani.com

का दृष्टान्त दिया है, उसका प्रयोजन यह जानना कि दर्पण को ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं इन पदार्थों को प्रतिबिम्बित करूँ। जिस प्रकार लोहे की सुई लोहचुम्बक के पास स्वयं ही जाती है, वैसे दर्पण अपना स्वरूप छोड़कर पदार्थों का प्रतिबिम्बित करने के लिये उनके पास नहीं जाता और वे पदार्थ भी अपना स्वरूप छोड़कर उस दर्पण में प्रवेश नहीं कर जाते। जैसे कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुष से कहे कि हमारा यह काम करो ही करो, तैसे वे पदार्थ अपने को प्रतिबिम्बित करवाने के लिये दर्पण से प्रार्थना भी नहीं करते। सहज ही ऐसा सम्बन्ध है कि जैसा उन पदार्थों का आकार होता है, वैसा ही आकाररूप वे दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रतिबिम्बित होने पर दर्पण ऐसा नहीं मानता कि यह पदार्थ मेरे लिये भले हैं, उपकारी हैं, राग करने योग्य हैं, अथवा बुरे हैं और द्वेष करने योग्य हैं; वह तो सभी पदार्थों के प्रति समानभाव से प्रवर्तन करता है। जिस प्रकार दर्पण में कितने ही घटपटादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं; उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्पण में समस्त जीवादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं। ऐसा कोई द्रव्य या पर्याय नहीं है जो ज्ञान में न आया हो। ऐसी शुद्धचैतन्य परम ज्योति की सर्वोत्कृष्ट महिमा स्तुति करने योग्य है।

यहाँ कोई प्रश्न करे, कि यहाँ गुण का स्तवन तो किया किन्तु किसी पदार्थ का नाम नहीं लिया – उसका कारण क्या? प्रथम पदार्थ का नाम लेना चाहिए, पश्चात् गुण का वर्णन करना चाहिए। उसका उत्तर :- यहाँ आचार्य ने अपनी परीक्षाप्रधानता प्रकट की है। भक्त दो प्रकार के होते हैं – एक आज्ञाप्रधानी और दूसरे परीक्षाप्रधानी। जो जीव, परम्परामार्ग से चले आए, जैसे-तैसे देव-गुरु का उपदेश प्रमाण करके विनयादि क्रियारूप प्रवर्तन करते हैं, उन्हें आज्ञाप्रधानी कहते हैं और जो अपने सम्यग्ज्ञान द्वारा प्रथम स्तुति करने योग्य गुण का निश्चय करते हैं, पश्चात् जिनमें वह गुण होता है, उनके प्रति विनयादि क्रियारूप प्रवर्तन करते हैं, उन्हें परीक्षाप्रधानी कहते हैं। क्योंकि कोई पद, वेश अथवा स्थान पूज्य नहीं है, गुण पूज्य है; इसलिये यहाँ शुद्धचेतनाप्रकाशरूप गुण स्तुति करने योग्य है, ऐसा आचार्य ने निश्चय किया। जिसमें ऐसा गुण हो, वह सहज ही स्तुति करने योग्य हुआ। कारण कि गुण द्रव्याश्रित है, द्रव्य से भिन्न नहीं, ऐसे विचारपूर्वक निश्चय करें तो ऐसा गुण प्रकटरूप से अरिहन्त और सिद्ध में होता है। इस प्रकार अपने इष्टदेव का स्तवन किया।।१।।

www.vitragvani.com

गाथा १ पर प्रवचन

अब ग्रन्थकर्ता श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव मङ्गलाचरण के निमित्त... मङ्गल आचरण निमित्त है। **अपने इष्टदेव को स्मरण करके,...** यह तो स्वयं टोडरमलजी ने पहले किया है। अब, स्वयं अमृतचन्द्राचार्य स्वयं भी देव और शास्त्र को नमस्कार करते हैं। देव और शास्त्र को। समयसार में दो का पाठ है। नमः समयसाराय। यहाँ दो लेंगे। **इष्टदेव को स्मरण करके, इस जीव का प्रयोजन...** यह जीव का प्रयोजन **सिद्ध होने में कारणभूत,...** आत्मा का प्रयोजन, वह मोक्ष, उसके **सिद्ध होने में कारणभूत, निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की...** आत्मा का प्रयोजन जो मोक्ष – पूर्णानन्द की प्राप्ति, उसके कारणभूत। **निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की एकतारूप...** देखो! इसमें से वे विपरीत अर्थ करते थे। मोक्षमार्ग की एकता। एकता अर्थात् जहाँ निश्चय है, वहाँ व्यवहार है, अलग-अलग है नहीं। दोनों एक हैं – ऐसा नहीं, परन्तु निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की एकतारूप उपदेश। साथ में है, ऐसा **उपदेश जिसमें है, ऐसे ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं।** लो! देखो! यह पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पहली-पहली बार पढ़ा जा रहा है, इतने वर्षों में कभी यह वाँचा नहीं। हिन्दी था न! हिन्दी। यह गुजराती होकर सबके हाथ में आया है न? बहुतों को आ गया है। अब, सूत्रावतार। अमृतचन्द्राचार्य स्वयं मङ्गलाचरण करते हैं।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।।१।।

पहले अन्वयार्थ लेते हैं। **'जिसमें...'** **'दर्पणतल इव'** दर्पण का तल अर्थात् **'तल की तरह...'** देखो! केवलज्ञान की व्याख्या करते हैं। केवलज्ञान-देव की व्याख्या बताते हैं। दर्पण की सपाटी, **'दर्पणतल इव'** उसकी **तल की तरह... 'सकला' समस्त 'पदार्थमालिका' 'समस्त पदार्थों का समूह...'** पर्याय (अर्थात्) प्रत्येक द्रव्य की भूतकाल की अनन्त पर्यायें। **'अनागत और वर्तमान काल की...'** और वर्तमान की **'समस्त अनन्त पर्यायों सहित प्रतिबिम्बित होता है, 'प्रतिफलित'...** एक समय में भगवान के ज्ञान में तीन काल, तीन लोक की जो भूत-भविष्य-वर्तमान पर्यायें हैं, उन्हें जानते हैं। उसमें आगे-पीछे कहाँ आया इसमें?

www.vitragvani.com

मुमुक्षु - होवें तब जाने।

उत्तर - होवे तब जाने या एकसाथ जाने? होवे तब जाने? भविष्य की पर्याय होवे तब जाने न भगवान? बण्डीजी! अभी जानते हैं। एक समय में तीन काल-तीन लोक को (जानते हैं।) होवे तब जाने वह तो, **'समस्तैरनन्तपर्यायैः'** ऐसा कहा है न? **'समस्तैरनन्तपर्यायैः'** समस्त पर्यायें। भूतकाल की अनन्त द्रव्य की, भविष्य की अनन्त और वर्तमान की अनन्त, अनन्त गुण की अनन्त, अनन्त गुण की अनन्त।

अतीत, अनागत और वर्तमान काल की समस्त अनन्त पर्यायों सहित... कौन? पदार्थों का समूह। यह पहले आ गया। समस्त पदार्थों का समूह। वह पदार्थों का समूह भी सब भूत-भविष्य, वर्तमान पर्याय सहित। **'प्रतिफलित'** उसमें प्रगट ज्ञात होता है, ऐसा प्रति ज्ञात होता है, प्रतिबिम्बित होता है। **वह...** वैसे तो प्रतिबिम्ब की बात लेते हैं। प्रतिबिम्ब कहा? उसका प्रतिबिम्ब कहाँ पड़ता था? उस सम्बन्धी का ज्ञान आया, उसे प्रतिबिम्ब कहने में आता है। दर्पण सपाटी में; दर्पण में भी कहाँ वह चीज आती है? वह तो अपनी पर्याय है। **वह 'परं ज्योतिः' सर्वोत्कृष्ट शुद्ध चेतनारूप प्रकाश...** यह परमात्मा, लो! इन्हें परमात्मा कहते हैं। जिन्हें एक समय में भूत, भविष्य, वर्तमान सभी पर्यायें ज्ञात होती हैं, ऐसे **सर्वोत्कृष्ट शुद्ध चेतनारूप...** देखो! **'परं ज्योतिः'** चैतन्य ज्योत, वह ऐसी है कि जिसे गत काल, वर्तमान, भविष्य सभी पर्यायों सहित पदार्थों का समूह जिसमें ज्ञात होता है। ऐसा सर्वोत्कृष्ट शुद्ध चेतनास्वरूप प्रकाश। लो! चार ज्ञान सर्वोत्कृष्ट नहीं।

सर्वोत्कृष्ट शुद्ध चेतनारूप प्रकाश जयवन्त वर्तो। लो! पहले माङ्गलिक किया। ऐसा केवलज्ञान जयवन्त वर्तो। भूतकाल में भी केवलज्ञानी हो गये, वर्तमान में है और भविष्य में होंगे - ऐसे केवलज्ञानी, जगत में जयवन्त वर्तो। सदा ही केवलज्ञानी रहो और तीन काल की पर्यायें उसमें ज्ञात हो - ऐसा उत्कृष्ट चैतन्य प्रकाश फिर ऐसा का ऐसा रहो। पहले शब्द में दर्पण का दृष्टान्त देकर सिद्ध किया। जैसे दर्पण में सभी चीजें ज्ञात होती हैं, वैसे ज्ञान में तीन काल-तीन लोक एकसाथ ज्ञात होते हैं। एकसाथ ज्ञात होते हैं - ऐसा ज्ञानपर्याय का धर्म है, स्वभाव है।

मुमुक्षु : दर्पण तल अर्थात्....

www.vitragvani.com

उत्तर : दर्पण तल। दर्पण के तल में जैसे दूसरी चीजें ज्ञात होती हैं। तल अर्थात् ऊपर का भाग। नीचे की लकड़ी नहीं। काँच के दो भाग होते हैं न? पिछला भाग नहीं, मुखाग्र (सामने का) भाग। प्रकाशमान। पीछे तो डाघ होती है, काला होता है, लकड़ी होती है। सामने के भाग में प्रकाशमान जैसे ज्ञात हों, वैसे ज्ञान के प्रकाश की पर्याय में, पर्याय में तीन काल-तीन लोक की पर्यायें ज्ञात होती हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दर्पण तल को सपाटी कहा न? दर्पण का ऊपर का भाग। पीछे के भाग में नहीं होता।

टीका : 'तत् परंज्योतिः जयति' – वह परम ज्योति... वह परम ज्योति सर्वोत्कृष्ट चैतन्य, उसकी सत्ता का स्वीकार करे न, ऐसा। एक समय में ज्ञान की पर्याय तीन काल-तीन लोक को एक समय में जाने – ऐसी सत्ता का स्वीकार, वह चैतन्य की सत्ता का स्वीकार है। समझ में आया? एक समय में ऐसी पर्याय – ऐसे अपना स्वभाव बताया। ओहोहो! ज्ञान की पर्याय, द्रव्य को सर्वोत्कृष्ट चेतन प्रकाश स्वरूप प्रगटा। भूत, वर्तमान, भविष्य सब पर्यायों के समूह सहित पदार्थों का समूह ज्ञात हुआ, वह जयवन्त वर्तो। ऐसी जिन्हें शक्ति प्रगट हुई, जगत में जयवन्त रहो, जयवन्त रहो! यह साध्य प्रगट प्रगट हुआ, वह जयवन्त रहो? हमको भी साध्य प्रगट होने का व्यवसाय है। (वह) प्रगटेगा – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जो सब चीज के जाननेवाले हैं, देव किसी चीज के करनेवाले नहीं हैं – ऐसा सिद्ध करना है। कोई कर्ता है ईश्वर न तो परमात्मा जगत के पदार्थों के समूह को करते हैं – ऐसा नहीं। देव उसे कहते हैं कि जिसके चैतन्य के सर्वोत्कृष्ट प्रकाश में तीन काल का पर्याय समूह ज्ञात हो, उसे देव कहा जाता है। देव की पहिचान दी, कर्ता-वर्ता कोई देव कहलाता ही नहीं। कर्ता होवे तो उसने पहले नहीं जाना था? पहले सर्वज्ञ हुआ नहीं। सर्वज्ञ कब कहलाये? कि सर्वज्ञ, एक समय में भूत, भविष्य और वर्तमान को जाने। कर्ता हुआ हो तो कर्ता पहले कोई चीज नहीं थी, उसे सर्वज्ञ तो कहलाये नहीं। होगी और फिर जानेगा, हुई अभी जानी और फिर जानी... ऐसा स्वभाव हो सकता नहीं – ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? देव का ज्ञान तो ऐसा है कि एक समय में तीन काल को जाने। देव कोई काल को उत्पन्न करे, कोई काल को, जगत की चीज को उत्पन्न करे और दो काल को जाने या उत्पन्न करे, बाद के काल को जाने – ऐसा वस्तु का स्वरूप है नहीं।

www.vitragvani.com

वह परम ज्योति... देखो न! इसे देव कहा जाता है। **सर्वोत्कृष्ट शुद्धचेतना का प्रकाश जयवन्त वर्तता है।** जयवन्त वर्तता है, त्रिकाल ऐसा का ऐसा वर्तता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनन्त काल से ये सर्वज्ञ परमेश्वर वर्ता ही करते हैं। पदार्थ ऐसे के ऐसे हैं, उनके ज्ञान में रचना हुई - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अहो! ज्ञान की सर्वोत्कृष्ट प्रकाशशक्ति और उसमें सब ज्ञात हो, वह सब जाननेवाले की दशा जयवन्त वर्तो, परमात्मा जयवन्त वर्तो! तीन काल में, तीन लोक को जाननेवाले, तीन काल को जाननेवाले का कभी विरह नहीं हो, न हो। ऐसी दशा सदा शाश्वत् रहो। आहाहा! देव की व्याख्या बड़ी की-तीन काल के समूह को जाने, पदार्थ समूह - बहुत सब पदार्थ हैं, एक ही तत्त्व नहीं है। अपने सिवाय भी अनन्त हैं। उनकी भूत-भविष्य और वर्तमान तथा अपनी भी भूत, भविष्य और वर्तमान सब पर्यायों को जानते हैं, लो!

'यत्र सकला पदार्थमालिका प्रतिफलति'-जिस शुद्धचेतनाप्रकाश में... भगवान के चैतन्य की पर्याय की निर्मलता में, **समस्त ही जीवादि पदार्थों का समूह...** जीव आदि (अर्थात्) अकेला जीव नहीं, छह द्रव्य हैं। छह द्रव्य हैं, वे तो एक केवलज्ञान की एक समय की पर्याय को जानने की ताकत है। समझ में आया? **समस्त ही जीवादि पदार्थों का समूह प्रतिबिम्बित होता है। 'प्रतिफलति'** ज्ञात होते हैं। **किस प्रकार? 'समस्तैः अनन्तपर्यायैः समं' - अपनी समस्त अनन्त पर्यायों सहित...** का अर्थ क्या किया? रहित? साथ में... साथ में। समस्त अनन्त पर्यायों के साथ में, सहित। अपने समस्त पर्याय स्वरूप। कौन? वह पदार्थ समूह। समस्त पदार्थ जगत के जितने हैं, वे सब समस्त अनन्त पर्यायों सहित ज्ञान के सर्वोत्कृष्ट सुख में, विकास में जानने में आते हैं। **प्रतिबिम्बित होता है।**

भावार्थ : शुद्धचेतनाप्रकाश की कोई ऐसी ही महिमा है,... ज्ञान की शुद्ध चेतना की पर्याय की प्रगट ऐसी कोई महिमा है। त्रिकाल तो है, उसकी बात नहीं है, यह तो वर्तमान की बात। **शुद्धचेतनाप्रकाश की कोई ऐसी ही महिमा है, कि उसमें, जितने भी पदार्थ हैं,...** तीन काल-तीन लोक जितने हैं, **वह सभी अपने आकार सहित...** अपने आकार सहित, ऐसा। आकार अर्थात् स्वरूप। जो उनका स्वरूप है। द्रव्य-गुण-पर्याय आदि, उनके स्वरूपसहित, **प्रतिभासमान होते हैं।** वह प्रतिभासमान

www.vitragvani.com

होता है। ...प्रतिभासमान इसमें है ? ऐसा लेना कि सब ही अपने आकार अर्थात् स्वरूप सहित प्रतिभासमान होते हैं, ऐसा चाहिए। **प्रतिभासमान होते हैं।** ठीक है। आहा! 'भा' का 'मा' हो गया है। कहो! समझ में आया ? यह तो हो जाता है, इसमें कुछ नहीं। यह तो छापने में अन्तर पड़ जाता है।

शुद्धचेतनाप्रकाश की कोई ऐसी ही महिमा है,... वह जानता है, बस! किसी पदार्थ को करना, हरना, बदलना, टालना, तोड़ना, प्राप्त करना, दूर करना – यह है नहीं। ऐसे देव के ज्ञान की पूर्ण शक्ति में सब ज्ञात हो, उसे देव कहने में आता है। तीन काल दूसरे को जाने और दूसरे की रक्षा करे और दूसरे को, जन्म लेकर मारे तथा राक्षसों को मारे और भक्तों को तारे, यह देव का स्वरूप नहीं है – ऐसा कहते हैं। जिसकी ज्ञानदशा में तीन काल-तीन लोक जाने – ऐसी ही जिसकी पर्याय की महिमा है, उसे दिव्य महिमा कहा जाता है। प्रवचनसार में आता है।

किस प्रकार? 'दर्पणतल इव' – जिस प्रकार दर्पण के ऊपर के भाग में... पीछे के भाग में नहीं, दर्पण के ऊपर के भाग में। तल शब्द है न इसलिए। **घटपटादि प्रतिबिम्बित होते हैं।** दर्पण के ऊपर के भाग में घटपटादि दर्पण में जैसे ज्ञात होते हैं, वैसे भगवान (के) ज्ञान की पर्याय में उन्हें लोकालोक ज्ञात होता है। द्रव्य में नहीं, पर्याय में ज्ञात होता है। द्रव्य तो त्रिकाल है। दर्पण में यह बाहर का भाग है न ? ऊपर में। वैसे यह पर्याय बाहर की बात है। प्रगट हुई पर्याय में सब ज्ञात होता है, द्रव्य तो त्रिकाल ध्रुव है। दर्पण के ऊपर के भाग में घटपटादि – घट-पट आदि सब प्रतिबिम्बित होता है, वैसे।

यहाँ दर्पण का दृष्टान्त दिया है, उसका प्रयोजन यह जानना कि दर्पण को ऐसी इच्छा नहीं है कि... अब, यह इसका सिद्धान्त आया। **दर्पण को ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं इन पदार्थों को प्रतिबिम्बित करूँ।** है ऐसी (इच्छा) ? दर्पण को ऐसी इच्छा है ? दर्पण का दृष्टान्त देकर यह सिद्धान्त सिद्ध करते हैं। दर्पण को ऐसी इच्छा नहीं है कि मैं इन पदार्थों को, यह पदार्थ ऐसे, सामने घट-पट दिखते हैं न वे। (दर्पण को ऐसी) इच्छा नहीं है कि इन पदार्थों को प्रतिबिम्बित करूँ। **जिस प्रकार लोहे की सुई लोहचुम्बक के पास स्वयं ही जाती है, वैसे दर्पण अपना स्वरूप छोड़कर पदार्थों का**

www.vitragvani.com

प्रतिबिम्बित करने के लिये उनके पास नहीं जाता... दोनों बात की। पदार्थों को... इच्छा नहीं, वैसे वहाँ जाता नहीं, ऐसा। पदार्थों को जानने के लिए दर्पण को इच्छा नहीं तथा दर्पण वहाँ जाता नहीं। पदार्थ के पास जाए तो दर्पण पदार्थ को जाने-ऐसा है नहीं - यह सिद्ध करना है। **दर्पण अपना स्वरूप छोड़कर पदार्थों का प्रतिबिम्बित करने के लिये उनके पास नहीं जाता...** यह अपने आता है - सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में, दीपक के अधिकार में।

और वे पदार्थ भी... लो! अब यहाँ ऐसा आया। दो बातें ऐसी पदार्थों की की - दर्पण की। दर्पण को इच्छा नहीं है और दर्पण पदार्थ को प्रतिबिम्बित के लिए पदार्थ के पास जाता नहीं। **वे पदार्थ भी अपना स्वरूप छोड़कर उस दर्पण में प्रवेश नहीं कर जाते।** लो! छोड़ते हैं, यहाँ घट-पट अपनी वस्तु छोड़ देते हैं? **अपना स्वरूप छोड़कर उस दर्पण में प्रवेश नहीं कर जाते। जैसे कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुष से कहे कि हमारा यह काम करो ही करो,...** यहाँ भी ऐसा है, देवदत्त का और यज्ञदत्त का।

जैसे कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुष से कहे कि हमारा यह काम करो ही करो, तैसे वे पदार्थ अपने को प्रतिबिम्बित करवाने के लिये दर्पण से प्रार्थना भी नहीं करते। ऐसे.... दर्पण को इच्छा नहीं और जिसे जानता है, उसके पास जाता नहीं। पदार्थ इसे प्रतिबिम्बित के लिये अपने स्वरूप को छोड़कर प्रविष्ट नहीं होते और इससे प्रतिबिम्बित होने के लिये प्रार्थना नहीं करते - भाईसाहब! प्रतिबिम्बित कर। दृष्टान्त सरस दिया है।

तैसे वे पदार्थ अपने को प्रतिबिम्बित करवाने के लिये दर्पण से प्रार्थना भी नहीं करते। सहज ही ऐसा सम्बन्ध है कि जैसा उन पदार्थों का आकार होता है,... आकार अर्थात् स्वरूप। **वैसा ही आकाररूप वे दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं।** लो! बहुत अच्छा दृष्टान्त दिया। दर्पण को इच्छा नहीं कि वस्तु को प्रतिबिम्बित करूँ। दर्पण अपने स्वरूप को, अपने भाव को छोड़कर वहाँ जाता नहीं। यह दो बातें की हैं। परपदार्थों को प्रतिबिम्बित करने के लिये वे दर्पण में प्रविष्ट नहीं होते और परपदार्थ, दर्पण से प्रार्थना नहीं करते (कि) भाई साहब! प्रतिबिम्बित कर। कहो, समझ में आया? दोनों ओर दो बोल लिये हैं।

www.vitragvani.com

सहज ही ऐसा सम्बन्ध है... स्वाभाविक ऐसा सम्बन्ध है। **कि जैसा उन पदार्थों का आकार होता है,...** देखो! वे पदार्थ इसमें। **वैसा ही आकाररूप वे दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं।** जैसा उनका स्वरूप हो, वैसा ही दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं। **प्रतिबिम्बित होने पर दर्पण ऐसा नहीं मानता...** अब, वापस यहाँ आया। परपदार्थों का दर्पण में **प्रतिबिम्बित होने पर दर्पण ऐसा नहीं मानता कि यह पदार्थ मेरे लिये भले हैं,...** मानता होगा दर्पण? यह रंग-बंग दिखे, कस्तूरी ऐसी पड़ी हुई दिखे। **यह पदार्थ मेरे लिये भले हैं, उपकारी हैं,...** ऐसा वह दर्पण मानता नहीं। ओहो! ज्ञेय-ज्ञायक की भिन्नता और फिर भी दोनों का ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध। भिन्नता होने पर भी दो का सम्बन्ध सहज हो जाता है - ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं।

यह पदार्थ मेरे लिये भले हैं, उपकारी हैं, राग करने योग्य हैं,... लो! मानता है? **यह पदार्थ मेरे लिये भले हैं, उपकारी हैं, राग करने योग्य हैं, वह तो सभी पदार्थों के प्रति समानभाव से प्रवर्तन करता है।** दर्पण को तो सभी पदार्थों के प्रति समानभाव रहता है। **जिस प्रकार दर्पण में कितने ही घटपटादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं; उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्पण में समस्त जीवादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं।** पहले में क्या कहते हैं? सब होते नहीं न, दर्पण में तो कितने ही पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं - ऐसा शब्द है। दृष्टान्त है न? दृष्टान्त में कोई सब दर्पण में होते नहीं। **जिस प्रकार दर्पण में कितने ही घटपटादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं;...** दर्पण में कोई सभी पदार्थ प्रतिबिम्बित नहीं होते। **उसी प्रकार...** दृष्टान्त का दर्पण तो कुछ पदार्थों को-थोड़े पदार्थों को प्रतिबिम्बित करता है। यह **ज्ञानरूपी दर्पण में समस्त जीवादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं।** इतना। समझ में आया?

....ज्ञान सबको जानता है, सर्वज्ञ को अल्पज्ञान नहीं है और राग नहीं है। यहाँ अल्पज्ञान और राग है परन्तु ज्ञान तो समस्त को जानता है। जानने के अतिरिक्त उसकी कोई क्रिया नहीं है, आत्मा की (दूसरी कोई क्रिया) है ही नहीं। समझ में आया? राग करना, व्यवहार करना, निमित्त को करना, व्यवहार दूर करूँ - ऐसा है ही नहीं। वह तो समस्त पदार्थों को, जैसे दर्पण थोड़े पदार्थों को जाने, वैसे अल्पज्ञानी प्राणी अल्प को जाने,

www.vitragvani.com

परन्तु जानने के अतिरिक्त, करना तो उसमें-आत्मा में है ही नहीं। राग का करना या शरीर की क्रिया को आगे-पीछे करना, यह वस्तु है ही नहीं। सर्वज्ञ पूर्ण को जाने, दर्पण जैसे थोड़े को देखे, प्रतिबिम्ब करे; वैसे यह भी थोड़े को भले प्रतिबिम्ब करे, परन्तु है तो इसका स्वभाव-राग; अल्पज्ञ और परवस्तु जैसे है, वैसे जानने का स्वभाव है। कहो, समझ में आया?

ज्ञानरूपी दर्पण में समस्त जीवादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं। ऐसा कोई द्रव्य या पर्याय नहीं है... इस जगत में ऐसा कोई पदार्थ या **कोई पर्याय नहीं है जो ज्ञान में न आया हो।** कहो, समझ में आया? निमित्त न आवे? निमित्त, पदार्थ है या नहीं? निमित्त, पदार्थ है या नहीं? पर्याय सहित है या नहीं? एक समय में सब (ज्ञात होते हैं) यहाँ भी यह कहा, फिर प्रश्न क्या है? यहाँ भी ज्ञान की पर्याय, राग को-पर को जानने की (होती है।) भले दर्पण थोड़े को (प्रतिबिम्बित करे), वैसे अल्पज्ञ थोड़े को (जाने), सर्वज्ञ समस्त को (जाने) - इतना अन्तर है। समस्त और थोड़ा। दृष्टान्त में दर्पण को थोड़ा है, ऐसे साधक को अपने ज्ञान में थोड़ा है, सर्वज्ञ के ज्ञान में सब -पूरे (ज्ञात होते हैं)। अन्तर तो इतना - थोड़े-अधिक का है; वरना जानने-देखने में कोई अन्तर नहीं है। समझ में आया? धर्मी का ज्ञान जानने का ही काम करता है - ऐसा कहते हैं। व्यवहार करना या व्यवहार छोड़ना, वह उसका काम नहीं। होवे उसे जाने, छूटे उसे जाने, न हो उसे जाने, जाने... जाने... जाने... ऐसा कहते हैं। दर्पण में थोड़े का दृष्टान्त दिया न? कितने? कितने-क साधक में दूसरा क्या? साधक में कितने ही पदार्थों को जाने। पूरा ज्ञान विकसित नहीं हुआ, इसलिए थोड़े पदार्थों का ज्ञेय-प्रतिबिम्ब नहीं होता। जितना ज्ञान खिला है, उतने सामने पदार्थ हैं, प्रतिबिम्ब है, उसे ज्ञात होते हें। कर्ता-बर्ता नहीं। ज्ञान किसे करे? सर्वज्ञ किसे करे? वैसे दर्पण किसे करे? वैसे अल्पज्ञान किसे करे? साधक का ज्ञान करे या नहीं करे कुछ? अणुव्रत पाले, यह सब करे, यह देखो, पूरा श्रावकाचार शास्त्र है। ऐ...ई...! व्यवहार से बात करेंगे। उस काल में, उसके ज्ञान में ऐसा भाव हो - अणुव्रत का हो, उसे जाने। व्यवहारनय से ऐसा कहे, वह करे, उसे पाले - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

www.vitragvani.com

केवलज्ञान में **ऐसा कोई द्रव्य या पर्याय नहीं है...** ऐसा कोई पदार्थ या अवस्था जगत में नहीं, **जो ज्ञान में न आया हो। ऐसी शुद्धचैतन्य परम ज्योति की सर्वोत्कृष्ट महिमा स्तुति करने योग्य है।** लो! ऐसे शुद्ध चैतन्य प्रकाश की सर्वोत्कृष्ट महिमा स्तुति करने योग्य है – ऐसा कहकर मांगलिक किया है। करनेयोग्य तो यह है। उसकी शक्ति एक समय में, उसमें ज्ञात हो, ज्ञान में छह काय का ज्ञान (हो), पदार्थ ज्ञात हो, उसे अपना मानता है वह? वह तो ज्ञान अपना है। वह पदार्थ को अपना मानता है? मुझे उपकारी हुए, मुझे बहुत उपकार हुआ, मुझे लाभ हुआ...

यहाँ कोई प्रश्न करे,... गुण की व्याख्या की न? पर्याय की। **यहाँ गुण का स्तवन तो किया...** यहाँ गुण शब्द से पर्याय है। **किसी पदार्थ का नाम नहीं लिया...** यहाँ तो पर्याय के गुण की व्याख्या की। गुण ऐसा... गुण ऐसा... गुण ऐसा... गुण ऐसा। सर्वोत्कृष्ट चैतन्यप्रकाश तीन काल-तीन लोक सबको जानता है। **पदार्थ का नाम नहीं लिया– उसका कारण क्या? प्रथम पदार्थ का नाम लेना चाहिए, पश्चात् गुण का वर्णन करना चाहिए।** ऐसा। पहले गुणी की बात करनी चाहिए पहले या गुण की? ऐसा कहते हैं... गुण की बात उठाई कि सर्वोत्कृष्ट चैतन्य प्रकाश ऐसा... गुणी से तो बात की नहीं।

उसका उत्तर :– यहाँ आचार्य ने अपनी परीक्षाप्रधानता प्रकट की है। उसका उत्तर – यहाँ आचार्य ने अपना परीक्षाप्रधानपना, परीक्षाप्रधानपना – परीक्षा करके हमने निर्णय किया है – ऐसी बात यहाँ प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया? **भक्त दो प्रकार के होते हैं – एक आज्ञाप्रधान...** एक आज्ञा माननेवाले **दूसरे परीक्षाप्रधानी। जो जीव, परम्परामार्ग से चले आए, जैसे-तैसे देव-गुरु का उपदेश प्रमाण करके विनयादि क्रियारूप प्रवर्तन करते हैं, उन्हें आज्ञाप्रधानी कहते हैं और जो अपने सम्यग्ज्ञान द्वारा प्रथम स्तुति करने योग्य गुण का निश्चय करते हैं,...** लो! अपने समयग्ज्ञान द्वारा जो पहले-पहले स्तुति करनेयोग्य गुण का अर्थात् पर्याय का निश्चय करे, **पश्चात् जिनमें वह गुण होता है, उनके प्रति विनयादि क्रियारूप प्रवर्तन करते हैं, उन्हें परीक्षाप्रधानी कहते हैं।** समझ में आया? आज्ञाप्रधान में कितना ही निर्णय तो है, हों! यह तो फिर एकदम (बिलकुल) निर्णण नहीं किया – ऐसा नहीं।

www.vitragvani.com

अपने सम्यग्ज्ञान द्वारा प्रथम स्तुति करने योग्य गुण का निश्चय करते हैं, पश्चात् जिनमें वह गुण होता है, उनके प्रति विनयादि क्रियारूप प्रवर्तन करते हैं, उन्हें परीक्षाप्रधानी कहते हैं। क्योंकि कोई पद, वेश अथवा स्थान पूज्य नहीं है,... कोई पद-वेष या स्थान-क्षेत्र, कोई वेष या कोई पद दूसरा बड़ा पद नाम दिया — आचार्य, भगवान - ऐसे नाम देते हैं न? भगवती, भगवान आदि कोई पद, कोई वेष अथवा स्थान-क्षेत्र पूज्य नहीं है। **गुण पूज्य है;...** यह सिद्ध करते हैं। लो, गुण पूज्य है। क्षेत्र में, पद में, स्थान में भी गुण पूज्य है।

इसलिये यहाँ शुद्धचेतना प्रकाशरूप गुण स्तुति करने योग्य है, ऐसा आचार्य ने निश्चय किया। लो! इससे यहाँ यह चेतना प्रकाशरूप गुण-केवलज्ञान की पर्याय (स्तुति करने योग्य है)। विरोध है सब, विवाद है। अनियत हो तो अनियत जाने, नियत हो तो नियत जाने, अनियत होवे तो यह निमित्त आया और न हुआ... भगवान के ज्ञान में अनियत कैसा? सर्वज्ञ को उड़ाते हैं, सर्वज्ञ की पर्याय की पूर्णता को उड़ाते हैं। शुद्ध चेतना प्रकाशरूप पर्याय। देखो! यह पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अमृतचन्द्राचार्य महाराज, जो तीन सूत्र में टीका करनेवाले - समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, वे इस सूत्र... पहले श्लोक में केवलज्ञान की स्तुति की है। धर्म का मूल सर्वज्ञ है। धर्म का मूल सर्वज्ञ है, क्योंकि ज्ञान की पर्याय चैतन्य, उसकी शक्ति, इन केवलज्ञानी ने जो देखा, तदनुसार कहा, उसे धर्म कहने में आता है। जिसे अभी केवलज्ञान की पर्याय के निर्णय का ठिकाना नहीं - सर्वज्ञ कैसे होते हैं? सर्वज्ञ एक क्षण में सब जानते हैं। कुछ बाकी रहता है?

शुद्धचेतना प्रकाशरूप गुण स्तुति करने योग्य है, ऐसा आचार्य ने निश्चय किया। जिसमें ऐसा गुण हो, वह सहज ही स्तुति करने योग्य हुआ। जिनमें ऐसी सर्वज्ञ चैतन्य प्रकाशमय पर्याय प्रगट हुई, वे सहज ही स्तुति करनेयोग्य होते हैं - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। कहो, समझ में आया? **जिसमें ऐसा गुण हो, वह सहज ही स्तुति करने योग्य हुआ।** ऐसा कहते हैं। स्वाभाविक उनकी स्तुति हो,... जिसे गुण प्रिय है और जिन्हें पूर्ण गुण प्रगटे, जिसे गुण की पर्याय प्रिय है और जिन्हें गुण पूर्ण प्रगट हुए हैं, उसे सहज ही गुण की स्तुति करनेयोग्य होता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे ऐसा

www.vitragvani.com

विकल्प आता है। ज्ञान में, केवलज्ञान की पर्याय इतनी होती है, गुण ऐसा होता है – ऐसा जिसे पहले गुण का प्रेम है, उसे गुण की पर्याय पूर्ण है, उसके प्रति स्तुति का सहजभाव स्तुति करने योग्य आता है।

कारण कि गुण द्रव्याश्रित है,... देखो! पदार्थ की बात की थी न? पदार्थ का तुमने नाम नहीं लिया और सीधे पर्याय की बात, गुण की बात की... परन्तु वह गुण जो है, वह द्रव्य के आश्रय से है, अलग नहीं। जो गुण की व्याख्या की, वह गुण, द्रव्य के आश्रय से है; गुण, द्रव्य से अलग नहीं है, अलग गुण नहीं है। **ऐसे विचारपूर्वक निश्चय करें तो ऐसा गुण...** है न? अब, अरिहन्त लेते हैं – द्रव्य। **कारण कि गुण द्रव्याश्रित है,...** वह निर्मल केवलज्ञान पर्याय, उस द्रव्य के आश्रय से है; वह पर्याय उस द्रव्य से अलग नहीं है – ऐसा विचारकर निश्चय करते हैं। ऐसा विचारकर निश्चय करते हैं। **तो ऐसा गुण...** अर्थात् ऐसी पर्याय। प्रगटरूप, पर्याय तो प्रगट है न? **अरिहन्त और सिद्ध में होता है।** ऐसी केवलज्ञान की पर्याय, पहले सर्वज्ञ को याद किया है, लो! पुरुषार्थसिद्ध्युपाय बताते हुए, श्रावक के आचार बताते हुए बारह व्रत आदि को बताते हैं। समझे न? दर्शन-ज्ञान सहित, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित श्रावक के अणुव्रत कैसे होते हैं, उन्हें बतायेंगे। इसमें पहले ही सर्वज्ञ को याद किया है। धर्मात्मा की सर्वज्ञ ही पहले स्तुति करनेयोग्य है – ऐसा यहाँ सिद्ध किया।

तो ऐसा गुण प्रकटरूप से अरिहन्त और सिद्ध में होता है। इस प्रकार अपने इष्टदेव का स्तवन किया। लो! इस प्रकार 'अमृतचन्द्राचार्य' महाराज ने अपने इष्ट अर्थात् प्रिय, ऐसे परमात्मादेव की शक्ति का यहाँ स्तवन किया, देव के गुण गाये। शास्त्र के नियम प्रमाण देव-शास्त्र-गुरु — ऐसा आता है न? उसमें देव की व्याख्या की। अब, गुरु न लेकर शास्त्र लेते हैं, आगम लेते हैं। फिर गुरु की बात। पहले स्वयं स्वयं की कहेंगे कि मैं यह कहता हूँ, परमागम कहता हूँ; उससे पुरुषार्थसिद्धि का उपाय विद्वानों को समझने योग्य है – ऐसी बात करेंगे। ऐसी आगम की व्याख्या फिर से आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)